धर्मनिरपेक्षता की सही संकल्पना

—हो. वे. शेषाद्रि

धर्म और सेकुलरिज़्म

—दत्तोपन्त ठेंगड़ी

प्रकाशक–
लोकहित प्रकाशन
राजेन्द्र नगर, लखनऊ
मूल्य : रु० २-००

द्वितीय संस्करण
मकर संक्रान्ति, १४ जनवरी १९९४
युगाब्द–५०९५
संवत–२०५०

मुद्रक : कौशल प्रेस, राजेन्द्र नगर, लखनऊ

धर्म और सेकुलरिज्म

दत्तोपंत ठेंगड़ी

धर्म और सेकुलरिज्म

जब कभी हम कोई चर्चा करें, तब हमारी चर्चा का विषय स्पष्ट और सटीक होना चाहिए। आज हमारी चर्चा का विषय है, 'धर्म'।

यह एक ऐसा शब्द है जिसकी थोड़ी बहुत व्याख्या जरूरी है। इसका कारण यह है कि उच्च स्तर के अधिकांश बुद्धिजीवी धर्म के नाम से चिढ़ने लगे हैं और इसे रिलीजन से जोड़ दिया जाता है तथा यह कोई ऐसी भावना समझ ली जाती है जो सेकुलरिज्म की विरोधी है, सेकुलरिज्म पर काफी बहस चल रही है और जब तक हम 'सेकुलर' 'रिलीजन' 'धर्म' आदि शब्दों में निहित अर्थ को अच्छी तरह नहीं समझ लेते हैं, तब तक इस विषय पर हम जो भी चर्चा करेंगे, वह व्यर्थ होगी।

सेकुलरिज्म

हमारे देश में 'सेकुलरिज्म' शब्द के बारे में काफी भ्रांति है। हमारे देश की संविधान सभा में जब इस शब्द पर बहस हुई, तब से लेकर हाल में प्रकाशित श्री पी० सी० चटर्जी की पुस्तक "Secular Values For Secular India" की अवधारणा के बारे में निरन्तर सार्वजनिक रूप से बहस चल रही है।

सेकुलर शब्द का सीधा-सादा अर्थ है, वह भावना जो किसी दूसरे लोक की नहीं हो या जो आध्यात्मिक न हो, भौतिक हो, जो सिविल हो और चर्च आदि से सम्बंधित न हो। 'सेकुलरिज्म' का अर्थ है हमारी ऐसी धारणा जो 'स्टेट', 'रिलीजन' से स्वतंत्र होनी चाहिए और यह कि चर्च और स्टेट दोनों को अलग-अलग होना चाहिए। भारत में 'स्टेट' हमेशा 'सेकुलर' रही है। पूज्य गुरुजी अक्सर कहा करते थे कि हिंदुओं के इतिहास में 'स्टेट' हमेशा सेकुलर रही और हिन्दू स्टेट निश्चित ही 'सेकुलर' स्टेट है।

डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर ने कहा था, "इसका अर्थात् सेकुलर स्टेट का यह आशय नहीं कि हम जनता की धार्मिक भावनाओं को ध्यान में नहीं रखेंगे। सेकुलर स्टेट का कुल मिलाकर अर्थ यह है कि इस संसद को किसी विशिष्ट धर्म को बाकी जनता पर लागू करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं होगा। यह संविधान केवल इसी सीमा तक

संसद के अधिकार को स्वीकार करता है। सेकुलरिज्म का अर्थ, “रिलीजन को समाप्त करना नहीं होता है।”

रिलीजन

श्री जवाहरलाल नेहरू ने अपने जीवन काल के उत्तरार्ध में ‘रिलीजन’ से सम्बन्धित सभी विषयों की जमकर भर्त्सना की। लेकिन वह ‘रिलीजन’ शब्द में निहित अर्थ के बारे में लिखते हैं, “शब्दों के बारे में सभी लोग यह मानते हैं कि उनकी मदद से जो बात कही जाती है, वह अधूरी रह जाती है और उनके मायने भी हर आदमी अपनी तरह लगा लेता है। ‘रिलीजन’ शब्द (या और जुबानों में इस मायने के और शब्द) के मायने तरह-तरह के लोगों ने जितनी तरह से समझे और दिये हैं, उतना शायद ही किसी जुबान में किसी और लफ्ज के साथ हुआ हो। हमें शायद ही ऐसे आदमी मिले जिनके मन में इस शब्द को सुनकर एक जैसे विचार उभरते हों ‘रिलीजन’ शब्द के सही-सही मायने (अगर इसके कोई सही मायने हैं) क्या हैं, यह आज कोई नहीं जानता। इसके कुछ मायने लगाए जाते हैं, जो इसके ठीक उल्टे होते हैं। तब बात अधिक उलझ जाती है और लोग लम्बी-चौड़ी बहस करने लगते हैं, तरह-तरह की दलीलें पेश करते हैं। अच्छा तो यही हो कि हम इसका इस्तेमाल ही करना छोड़ दें और इसकी जगह थियोलौजी, फिलोसोफी, मॉरल्स, एथिक्स, स्पिरिच्युआलिटी, मेटा-फिजिक्स, ड्यूटी सेरिमोनियल जैसे शब्दों का इस्तेमाल करना शुरू कर दें।”

गांधी जी ने एक स्थान पर लिखा है कि कोई भी आदमी ‘रिलीजन’ के बगैर नहीं रह सकता लेकिन कुछ ऐसे लोग हैं, जो अपनी दलीलों की झोंक में कह बैठते हैं कि हमारा ‘रिलीजन’ से कोई सरोकार नहीं है। लेकिन यह ऐसा ही है कि जैसे कोई आदमी यह कहे कि मैं सांस लेता हूँ लेकिन मेरी नाक नहीं है। वह आगे लिखते है, सत्य के प्रति मेरी जो निष्ठा है, उसकी वजह से मैं सियासत में आया। मुझे यह कहने में कोई झिझक नहीं है और यह बात मैं विनयपूर्वक कहता हूँ कि जो लोग यह मानते हैं कि ‘राजनीति’ से रिलीजन का कोई सरोकार नहीं होता, उन्हें इस बात का पता नहीं कि ‘रिलीजन’ के क्या मायने होते हैं? जो लोग जिन्दगी और राजनीति से रिलीजन को निकाल देना चाहते हैं, उन लोगों के बारे में गांधी जी यह कहते हैं कि इन लोगों में से अधिकांश लोगों को ‘रिलीजन’ शब्द का यह आशय नहीं मालूम है, जो मैं जानता हूँ और जो ज्यादा

ठीक होता है। जाहिर है कि गांधी जी इस शब्द का प्रयोग शायद 'नैतिक' अर्थ में या इससे कुछ और अधिक आशय से करते थे और यह अर्थ उनके आलोचकों द्वारा सुझाये गये अर्थ से भिन्न था। एक ही शब्द अलग-अलग कई अर्थों में इस्तेमाल होने से हमें आपस में उस शब्द को समझना मुश्किल हो जाता है।

यहाँ मुझे प्रभु ईसा के वह वचन याद आते हैं, "शब्द तो मर जाता है, लेकिन उसकी आत्मा बार-बार जन्म लेती है।"

विलियम केप की टिप्पणी

मैं आप का ध्यान विलियम केप की इस टिप्पणी की ओर आकृष्ट कर रहा हूँ जिसे प्रो. हुमायूं कबीर ने उद्धृत किया है।

"भिन्न-भिन्न जातियों और परस्पर विरोधी विश्वास वाली व्यवस्थाओं का एक दूसरे के साथ सामंजस्य स्थापित करने और उन्हें एक-दूसरे में मिला देने की क्षमता के कारण ही हिन्दू संस्कृति विलक्षण रीति से एक सुदृढ़ संस्कृति के रूप में अनादिकाल से जीवित बनी हुई है। इसकी इस क्षमता का कारण यह है कि इसमें असमान तत्वों को समाहित करने का सामर्थ्य है और इस कारण इसमें विविधता होते हुए भी एकसूत्रता है। मनुष्य जाति के इतिहास में इस जैसी शायद ही कोई दूसरी संस्कृति मिले।"

कैप लिखते हैं, "वस्तुतः सत्य के रूप असंख्य हैं और वास्तविकता का एक ही स्वरूप हो, यह कहना कठिन है। इसका कारण प्रसंगों की विविधता और तद्नुरूप उनका निर्धारण है। हिन्दू विचारकों में जो सहिष्णुता है उसका मूल समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण के अनेक होने में निहित है। वह इन विविध दृष्टिकोणों से वास्तविकता के विशिष्ट स्वरूप तक पहुंचने का प्रयास करता है।

यूरोप के दर्शन शास्त्र में परस्पर विरोधी विचार श्रृंखलाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। यूरोपीय विचार की दृष्टि चरम सत्य पर टिकी रहती है और वह विरोधी विचारधाराओं को नकारते हुए एक कटी-छटी सुस्पष्ट विचारधारा तक पहुँचने के लिए अनेक दृष्टिकोणों को मान्यता प्रदान करता हैं और सत्य के किसी भी स्तर को अस्वीकार नहीं करता।

वह आगे लिखते हैं कि वह (यूरोपीय विचारक) वास्तविकता की व्याख्या चरम सत्य और चरमत्रुटि के रूप में करना चाहता है। इसी कारण यूरोपीय दर्शन में विचारों में तीखापन और निरन्तर आलोचन-प्रत्यालोचन मिलता है, लेकिन इस कारण ही सत्य के प्रति उनके दृष्टिकोण में हठ और संकीर्णता मिलती है। किन्तु इसके विपरीत भारतीय दर्शन में आरम्भ से वास्तविकता के विविध रूपों को स्वीकार किया जाता है तथा इसे तरह-तरह के परस्पर विरोधी वर्गों के रूप में अभिव्यक्त नहीं किया गया है। भारतीय दर्शन शास्त्र में सत्य के जितने रूप स्वीकार किए गये हैं उनकी तुलना यूरोपीय दर्शन शास्त्र से नहीं मिलती।"

यही कारण है कि पश्चिम के आदर्शों के आधार पर भारतीय परिस्थितियों या दर्शन को आंकने में कुछ न कुछ जोखिम अवश्य बनी रहती है। इसलिए जब हम अपने राष्ट्र के भविष्य के बारे में कुछ सोचते हैं तब यह देखकर कि पश्चिम के मानदंड जहाँ एक ओर असफल रहे हैं वहीं दूसरी ओर उनके और हमारे इतिहास की भौतिक गतिविधि में अन्तर है, हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम कुछ नये लक्ष्य या आदर्श निश्चित करें।

हम अपनी संस्कृति, प्राचीन परम्पराओं, आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के सन्दर्भ में अपनी उन्नति और विकास के लिए अपने आदर्शों का गहरा अध्ययन करें और उससे जहाँ भी सम्भव हो, लाभ उठाएँ। किन्तु हमें अपने भविष्य के लिए इन आदर्शों को अन्धे होकर नहीं अपनाना चाहिए।

हमें चाहिए कि हम धर्म को लक्ष्य के रूप में ग्रहण करने की पद्धति का इसलिये परित्याग नहीं करें कि कुछ लोग इसे भूल से 'रिलीजन' समझ बैठते हैं इसे एक ऐसी संकल्पना कहते हैं जो सेकुलरिज्म के खिलाफ होती है।

सेकुलरिज्म का इतिहास

सेकुलरिज्म पर जो भी बहस होती है, वह पश्चिम से अनुप्राणित है। सेंट मार्क (Saint Mark the Evangelist) ने अपने एक उपदेश में कहा था, "जो कुछ कैसर (राजा) का है वह उसे और जो कुछ ईश्वर का है वह उसे समर्पित कर दो।" राजा के बारे में यह अवधारणा यूनानी और रोम की अवधारणा से भिन्न है, जो वहाँ के निवासियों की

जीवन पद्धति का आधार थी। मिलान में ३१२ ई० के शिलालेख मार्क के इस उपदेश की पुष्टि करते हैं।

सम्राट कांस्टांटाइन (Constantine the Great) ने ईसाई धर्म स्वीकार करने के बाद ईसाई धर्म को अपने समस्त राज्य का राज्य धर्म घोषित किया और ३४६ ईस्वी में उसने उन सभी पूजागृहों को बन्द कराने का आदेश दिया जो ईसाई धर्म के नहीं थे। इसके बाद यूरोप में एक ऐसा दौर शुरू हो गया जिसमें कभी चर्च तो कभी स्टेट एक दूसरे पर हावी होने लगे।

सेकुलरिज्म की विचारधारा का मूल जेम्स मिल और बेंथम के उपयोगितावाद में निहित है। उन्हें इसकी प्रेरणा थॉमस पेन और रिचर्ड कार्लाइल से मिली, जो ईश्वर की सत्ता में बिल्कुल ही विश्वास नहीं करते थे। उपयोगितावाद ने सेकुलरिज्म को दो आधार दिये। पहला, विचारों की स्वतन्त्रता के साथ मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास और दूसरा, समाज के निर्माण में रिलीजन का कोई सरोकार न होगा। यह कहा गया, "जिन प्रयोजनों के लिये घर है उन प्रयोजनों की पूर्ति उसके वास्तुकार के स्मरण के बिना हो सकती है।"

राजनीति के क्षेत्र में सेकुलरिज्म का उदय उन घटनाओं के कारण हुआ जो सन् १८३२ के रिफार्म बिल बनने के पहले हुई और जिनके परिणामस्वरूप यह बिल बना था। सेकुलरिज्म की भावना को राबर्ट ओवन (Robert Owen) के समाजवाद और चार्टिस्ट आन्दोलन (The Chartist Movement) से भी प्रेरणा मिली। लेकिन सेकुलरिज्म को यह नाम काफी समय बाद मिला। इसकी संकल्पना को मूर्त रूप देने का श्रेय जार्ज जेकब हॉलीओक (George Jacob Holyoake) को है। होलीओक ने यह शब्द सन् १८५० में ब्रेडला (Charles Brad laugh) से मिलने के बाद गढ़ा था। हेलीओक का कहना था कि ईश्वर की सत्ता को स्वीकार न करना सेकुलरिज्म की धारणा की एक अनिवार्य शर्त है।

संयुक्त राज्य अमरीका में रिलीजन से सभी प्रकार की स्वतन्त्रताओं का सूत्रपात हुआ। यूरोप में राजनीतिक स्वतन्त्रता आई। संयुक्त राज्य अमरीका में रिलीजन के भिन्न मत होने के कारण धार्मिक स्वतन्त्रता, व्यक्ति और समाज के चिन्तन का एक अंग बन गई। लेकिन यूरोप में यह भाव 'रिलीजन' के प्रति लोगों की उदासीनता या विरोध के कारण

हुआ। संयुक्त राज्य अमरीका में सन् १९७१ के पहले संशोधन और (एक शताब्दी से अधिक समय बीतने के बाद) कैंटवेल बनाम कनेक्टीकट (Cantwell v. Connecticut) मुकदमें में वहाँ के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय (१९४०) जिसमें चौदहवें संशोधन की पुष्टि की गई थी, वहाँ सेकुलरिज्म की समस्या पर सरकार के दृष्टिकोण की थोड़ी बहुत जानकारी मिल जाती है।

हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि भावी भारत के लिए बुनियादी ढांचा ऐसा तैयार किया जाए कि जिस पर रिलीजन का कोई भी प्रभाव या प्रेरणा नहीं हो, यह ढांचा सनातन धर्म के सार्वजनीन नियमों के संदर्भ में तैयार किया जाना चाहिए, डॉ. अम्बेडकर ने कहा था, 'रिलीजन सटीक रूप से एक व्यक्तिगत मामला है जबकि धर्म का सम्बन्ध समाज से होता है।'

लेकिन समस्या तब पैदा होती है जब हमारे कुछ बुद्धिजीवी भारतीय परिस्थितियों पर उसी प्रकार जोर-जबरदस्ती से एक कृत्रिम व्यवस्था लादना चाहते हैं, जैसा कि यूरोपीय विचारकों ने किया था। विचारों और संकल्पनाओं के क्षेत्र में जो भी घटनाएं होती हैं, वे पूर्व और पश्चिम में एक जैसी नहीं होती।

यूरोपीय विचारधारा का विकास

यूरोप में मध्यकालीन युग आस्था का युग था। इस युग में मुख्य विभूतियां थी, सेंट आगस्टीन, सेंट थॉमस एक्वीनास, बोथ्यूस एरिजेना, अंसलेन, एबीर्लड, बोनवेसुरा और एवीरास। रिनेसा का युग प्राय: साहस या उद्यम का युग कहा जाता है। दाविंसिं, मोरे, माकियावेली, माइकेल, एगसो और एरासमुस, कोपरनिकस, मांटेग्ने, केपलर, गैलीलियो, और जियोडान, ब्रूनो ने बौद्धिक क्रान्ति के बीज बोए थे। सत्रहवीं शताब्दी में दर्शन के क्षेत्र में भौतिकी और गणित की प्रधानता हो गई तथा परम्परागत धर्म का अध्ययन गौण हो गया। सत्रहवीं शताब्दी तक का यह युग था। इस युग में पास्कल, हाब्स, डेकार्ट्स स्पीनोजा और लाइब्नीज मुख्य विचारक हुए हैं।

अठारहवीं शताब्दी को लोग ज्ञान का युग कहते हैं। लाक, बकंले, वाल्तेयर, ह्यूम, रीड, काडिले और उनके जर्मन आलोचक इस युग के दार्शनिक थे। उन्नीसवीं शताब्दी आदर्श युग कही जाती है। इस युग में कांट, फीस्टे, हीगल, शॉपनहावर, कामटे, मिल, स्पेंसर,

मार्क्स, नीत्शे और किर्क-गार्ड, प्रमुख विचारक थे। हम बीसवीं शताब्दी के मध्य में हैं। जिसे विश्लेषण का युग माना गया है। इस युग में पायर्स ह्वाइटेड, जेम्स डिबे, बर्टेड रसेल, बिटग्रेस्टीन, क्रोस, वर्गसां, सांमे, हर्बर्ट, माक्यूर्स, फ्रांज, फैनन, चे गुवेरा, आर. डी. लेईग, सांतायन आदि हमारी जानी-पहचानी विभूतियां हैं।

यूरोपीय दर्शन की यही यात्रा है। इस यात्रा का मूल जाने बिना यह समझना कठिन है कि ये बुद्धिजीवी पिछली शताब्दी में कुछ प्रगतिशील अवधारणाओं से क्यों चिपके रहे। जैसा कि हम जानते ही हैं कि भारतीय दर्शन का ऐतिहासिक विकास बिल्कुल भिन्न तरीके से हुआ है।

काप्रा के विचार

काप्रा हमारे युग के प्रमुख विचारक हैं। उनका मत है कि पश्चिम के विचारकों ने मूल तक सहजज्ञान पर आधारित विवेक की अपेक्षा विज्ञान को, सहयोग की अपेक्षा प्रतियोगिता को, प्रकृति की संपदा का संरक्षण करने को अपेक्षा उसके मनमाने उपयोग को वरीयता दी है और अन्य कारणों की भांति इन कारणों से गंभीर रूप से सांस्कृतिक असंतुलन उत्पन्न हो गया है जो मौजूदा संकट का, हमारे विचारों और भावनाओं में, हमारे मूल्यों और दृष्टिकोणों में, हमारे सामाजिक तथा राजनीतिक ढाँचों में अन्तर का मूल कारण है। वह कहते हैं कि मौजूदा संकट संवेदनशील संस्कृति से संक्रमण है। व्यक्ति के रूप में, समाज के रूप में, सभ्यता के रूप में और समस्त भूमण्डलीय पर्यावरण तंत्र के रूप में हम ऐसे मोड़ पर आ खड़े हुए हैं, जहाँ से नया रास्ता शुरू होता है। क्या उस मोड़ पर पश्चिम के मानदण्ड दिग्भ्रान्त मनुष्य जाति की कुछ सहायता कर सकते हैं?

इस महान विचारक का कहना है, "इसलिए आज हमें मानदण्ड यथार्थ के नए स्वरूप और हमारे विचारों, हमारी अवधारणाओं तथा हमारे मूल्यों में मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता है।"

क्या इसका अर्थ यह है कि मनुष्य जाति के इतिहास में उत्पन्न इस विलक्षण क्रांति के समाधान के लिए पश्चिम के मानदण्ड साधन के रूप में कारगर नहीं रह गये हैं?

पश्चिम का विचार दर्शन

हम देखते हैं कि पश्चिम के विचार-दर्शन की एक लम्बी यात्रा से जो परिणाम हमें प्राप्त हुए है, वे अपूर्ण हैं, त्रुटिपूर्ण हैं और उनसे कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है।

धर्म की अवधारणा विशिष्ट रूप से भारतीय अवधारणा है। धीरे-धीरे हमारे बुद्धिजीवी यह स्वीकार करने लग गये हैं कि धर्म रिलीजन से भिन्न हैं। 'रिलीजन' एक उच्चतर अदृश्य नियंत्रण शक्ति में आस्था है, उसकी स्वीकृति है या उस सत्ता का बोध है। हमारे साथ हमारी भावनाएं और हमारे नैतिक आदर्श, हमारे आचार-विचार या पूजा की हमारी पद्धति या इस जैसी ही हमारी आस्थाएं या पूजार्चन की प्रणाली जुड़ी हुई है। श्री एस. राम जायस "Legal and Constitutional History of India" नामक अपनी पुस्तक में लिखते हैं, 'धर्म' संस्कृत भाषा का शब्द है। इसके व्यापक अर्थ हैं। इस जैसा शब्द किसी भी भाषा में नहीं है। शब्द की परिभाषा व्यर्थ है। इसकी केवल व्याख्या की जा सकती है। इसके अनेक अर्थ होते हैं। इनमें से कुछ से सम्भवत: हमें इसके अर्थ की व्यापकता का आभास मिल सके। उदाहरणार्थ, "धर्म" शब्द का प्रयोग न्याय (Justice) के लिए किया जाता है। अर्थात किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में क्या उचित हैं, क्या नैतिक है, रिलीजन पर आधारित है, पवित्र या न्यायोचित आचार है, प्राणियों के लिए सहायक है, दान या दया का रूप है? क्या प्राणियों का वस्तु का सहज गुण, उनकी विशेषता या चिन्ह का, क्या कर्तव्य है, क्या विधि, क्या अनुमोदन प्राप्त हो? इसका अर्थ राज्य-शासन भी है। महाभारत में कहते है कि परिभाषा करना कठिन है। धर्म की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि जो प्राणियों के उत्थान में सहायक हो, उसे धर्म कहते हैं। इसलिये जो प्राणियों के कल्याण को सुनिश्चित करे, वही निश्चित रूप से धर्म है। हमारे विद्वान ऋषियों ने कहा कि जो धारण करता है, वह धर्म है।

श्री राम जायस आगे लिखते हैं कि जब धर्म शब्द का प्रयोग राजा या सम्राट के कर्तव्यों या शक्तियों के प्रसंगों में किया जाता है तब उसे 'राजधर्म' कहते हैं। इसी प्रकार जब यह कहा जाता है कि जनता की सुख-समृद्धि के लिए और कल्याणकारी समाज की स्थापना के लिए 'धर्म राज्य' का होना आवश्यक है, तब 'राज्य' शब्द के संदर्भ में धर्म का अर्थ केवल "विधि" है और 'धर्म राज्य' का अर्थ है, विधि का शासन। 'रिलीजन' के शासन का किसी 'थियोक्रेटिक' स्टेट की स्थापना से कोई आशय नहीं है।

भारतीय विचार

हमारे सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री गजेन्द्र गडकर का मत है कि संसार के अन्य रिलीजनों की तरह हिन्दू रिलीजन में भी किसी एक पैगम्बर के होने की घोषणा नहीं की गई है। इसमें किसी एक ईश्वर की पूजा का विधान नहीं है। इसी प्रकार इसमें किसी एक दार्शनिक अवधारणा की बात नहीं की जाती है, न इसमें रिलीजन पर आधारित किसी विशिष्ट आचार प्रणाली या प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है, वस्तुत: यह किसी एक रिलीजन या जाति की संकीर्ण परम्पराओं की पुष्टि नहीं बना। यह जीवन शैली के अलावा कुछ भी नहीं है। भारतीय दर्शन पर इतिहास में बार-बार जोर देकर यह कहा गया है कि हिन्दू रिलीजन की प्रेरणा का आधार सत्य की खोज है, जो चिरन्तन है और यह खोज इस विश्वास के आधार पर की जाती है कि सत्य के अनेक पक्ष होते हैं। सत्य एक है किन्तु ज्ञानीजन इसकी व्याख्या अलग-अलग रीति से करते हैं।

सी. के. एन. रजा ने 'एक्विटेड बाई हिस्ट्री' नामक अपनी एक कृति में लिखा हैं, प्राचीन भारतीय विधि शास्त्र में वर्णित धर्म को अंग्रेजी "लॉ" का पर्याय नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि धर्म शब्द का अर्थ और प्रयोग दोनों ही व्यापक हैं। किन्तु अंग्रेजी में इस शब्द का सटीक तुल्यार्थी शब्द के अभाव में "लॉ" शब्द कुछ ऐसा है जो धर्म के कुछ निकट प्रतीत होता है।

यहाँ धर्म का आशय रिलीजन न होकर 'विधि' है, धर्म की धारणा के अधिक निकट है। जब हम भावी भारत के लिए किसी बुनियादी ढाँचे के बारे में कुछ भी निश्चय करते हैं तब धर्म के सार्वजनिक नियम ही हमारे आधार होने चाहिए।

क्या हम अपने को पश्चिमी दर्शन के व्यापक प्रभाव से मुक्त कर सकते हैं? क्या हम पश्चिम की विचारधारा का अध्ययन करते समय अपनी विचारधारा की संकल्पना कर सकते हैं, जो विशिष्ट रूप से भारतीय चिन्तन प्रणाली कही जा सके? हाँ, महात्मा गांधी, पूज्य गुरुजी, पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने यह कार्य कर दिखाया है। उदाहरणार्थ दीनदयाल जी पश्चिम की समस्त विचारधाराओं से पूरी तरह परिचित थे।

समष्टि मानवतावाद

मार्क्सवादी और एडवर्ड (Eduard Bernstein) से टिटो तक के संशोधनवादियों की विविध व्याख्याओं के साथ-साथ उन्हें राबर्ट ओवन(Robert Owen), फोरियर (Charles Fourier) व कैबे के सामाजिक प्रयोगों, सेंट साइमन(Saint-Simon) के सिद्धांतों, ग्रेचूएनेवूक के समाजवादी सैन्यवाद, ओ कानर के कृषि समाजवाद, ओ बाइन के सर्वहारा समाजवाद, ब्लेंगुई का अल्पसंख्यक चेतना सिद्धांत, लुईस कैलास के विकासवादी समाजवाद, शुल्ज डेलित्व के स्वयं सहायता सिद्धांत, ब्रुनो नायर, मोएज हेस और कार्ल गुन नामक जर्मन त्रिमूर्तियों के यथार्थ समाजवाद से वे प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: परिचित थे। उन्होंने लासले, सिम्मोंदी, लेमोनास और प्राधोन (Pierre-Joseph Proudhon) का भी अध्ययन किया था। उन्होंने मार्क्सवाद से पहले और इसके बाद की यूरोपीय विचारधाराओं का आलोचनात्मक विश्लेषण किया था, जिनमें पूंजीवाद, अराजकतावाद, और समाजवाद की सभी कोटियाँ आ जाती हैं।

पं. दीनदयाल जी ने इन सभी विचारधाराओं और भारतीय दर्शन की विविध विधाओं को आत्मसात् किया और इसके बाद समष्टि मानवतावाद (Internal Humanism) की अवधारणा की थी। यह सनातन धर्म की अभिव्यक्ति है, द्वितीय औद्योगिक क्रान्ति के बाद युग की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। यह अवधारणा आज हमारे लिए चर्चा का, व्याख्या का विषय है। हम आज जो भी चर्चा करेंगे, उसके मूल में यही अवधारणा है।

व्यवहार में, धर्म में वे सभी आदर्श समाविष्ट हैं, जो शाश्वत हैं, विश्वजनीन और सार्वभौम हैं, जो सदा एक जैसे रहते हैं, लेकिन इसमें इन विश्वजनीन आदर्शों के सम्बन्ध में निरन्तर परिवर्तनशील सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था भी निहित है, उदाहरणार्थ, स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में नैतिकता एक ऐसा विधान है जो विश्वजनीन है। लेकिन इस नैतिकता को सुरक्षित रखने और इसका संवर्धन करने के लिए जो ढाँचा बना हुआ है वह न तो शाश्वत है और न ही विश्वजनीन। यह ढाँचा भिन्न-भिन्न युगों और वातावरण में भिन्न-भिन्न हो सकता है। हमारे अपने देश में ही समय-समय पर इस ढांचे में फेरबदल होते रहते हैं। चर्च के धर्म में इस क्षेत्र में किये गए कठोर उपायों की प्रतिक्रियास्वरूप मार्क्स तथा यूरोप के अन्य विचारकों ने विवाह और परिवार की संस्था को बुरा बताया।

इससे कुछ साम्यवादी देशों में यह गलत धारणा उत्पन्न हो गई कि सच्चे साम्यवादी के लिए नैतिकता का होना आवश्यक नहीं है। उन्होंने एक उल्टी सी बात कही किन्तु लेनिन और ट्राटस्की जैसे कुछ गंभीर नेताओं ने सार्वजनिक रूप से इस मत को बुरा बताया। इन नेताओं का मत रहा की जो अपने व्यक्तिगत जीवन में उत्तरदायित्वपूर्ण नहीं हैं, उसके सार्वजनिक जीवन पर भरोसा नहीं किया जा सकता। नैतिकता एक विश्वजनीन विधान है, विवाह आदि संस्थागत व्यवस्था समाज में समय-समय पर होने वाले परिवर्तनों के अनुसार या उसमें साथ-साथ बदलती रहती है। हमें धर्म के व्यवहार के बारे में इसी प्रकार के दृष्टिकोण को समझकर भावी भारत लिए बुनियादी ढांचे की प्रस्तावना पर विचार करना चाहिए।